Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 16, Issue No. 4, March-2019, ISSN 2230-7540

समकालीन कला में प्रतीकों का महत्व

Priyanka Singh*

Research Scholar (Drawing & Painting) M.J.P. Rohilkhand University, Bareilly, Uttar Pradesh

सार – *कला निरन्तर प्रगतिशील एवं गतिशील रही है। कला मनुष्य के जीवन व संस्कृति का एक अंग है। इसके द्वारा प्राचीन संस्कृति, सभ्यता, परम्पराओं आदि का बोध होता है। अपनी परम्पराओं एवं संस्कृति को नई पीढी में स्थानान्तरित करने का ये सबसे सरल एवं सफल माध्यम है। कला का स्वरूप परिवर्तन होता रहा है, समाज की सभ्यता एवं संस्कृति के विकास के साथ कला का विकास भी होता रहा है। कला सदैव ही समकालीन रही है किन्तु उसमें देश, काल, परिस्थितियों एवं मनुष्य के विचारों का प्रभाव उस पर समय-समय पर पड़ता रहा है, और उसमें अपेक्षित परिवर्तन भी संभव है। परम्परा-परिवर्तन-आधुनिकता के धर्म को निभाते हुये भारतीय कला यहाँ तक पहुँची। 19वीं शदी के अन्त तक अंग्रेजों ने पाश्चात्य चित्रकला को भारत में फैलाने का पूर्ण प्रयास किया। जिसमें वह सफल भी हुये। शताब्दी के अन्त तक पूर्वी भारत के कला जगत में दो विशिष्ट कला रूप प्रकट हुये। अधिसंख्या में प्रतिभाशाली कलाकारों ने प्रचलित तकनीक अपना ली। वे अपनी चित्रात्मक आकांक्षा की दृष्टि के लिये व अपनी जीविका के लिये भारतीय जीवन और परिदृश्य को यूरोपीय शैली में चित्रित करने लगे। तथा अन्य कुछ ने बहुत करके ग्रामीण एवं अति सम्पन्न वर्गों के आनन्द के लिये भारतीय संस्कृति एवं प्रतीको के चिर परिचित चित्र बनाना स्वीकार किया। जिन्हे बाजार में पेन्टिग कहा गया। विदेशी शासन की चकाचौंध और नवीन संघर्षों ने हमारी हर चीज को बेगाना सा बना दिया। भारतीय कलाकारों ने अंग्रेजों की शैली एवं तकनीक को सीखा और उनकी शैली में चित्रांकन भी किया। किन्तु अपनी पारम्परिक कला को भी बनाये रखा है। जिससे धीरे-धीरे नई शैली का विकास हुआ। जिसे वर्तमान में समकालीन कला कहा गया।*

शब्दकुंजी:- *समकालीन कला, इतिहास, भारतीय संस्कृति, प्रतीक*

----------X----------

प्रस्तावना

जो भी व्यक्ति समय की चेतना को आत्मसात करता है। उसे समकालीन कहा जाता है। जब चित्रकार देश काल की सीमाओं को लांघकर मनुष्य एवं प्रकृति का वह रूप देख पाने में सक्षम होता है। जो चिरंतन-सा है। जो कृति कालजयी बन जाती है और किसी न किसी रूप में सदैव एवं सर्वत्र जान पड़ती है। ऐसी कृति का लक्ष्य एवं संदेश सर्वग्राहा बनने में सक्षम हो पाता है। तो वह समकालीन होता है। चित्रकला के क्षेत्र में एक साथ एक समय में रचना करने वालों को "समकालीन शब्द" से सम्बोधित करते हैं। यह प्रवृत्ति वास्तव में तत्कालीन घटनाओं, परिवर्तनों के आधार पर उभरकर आती है। समकालीन होने का मतलब उसके अतः विरोधों को प्रस्तुत करना मात्र नहीं है। साथ ही साथ उसमें भविष्य को उज्जवल बनाने वाले नमूने भी निहित है। जो उसे सचमुच समकालीन बनाते हैं। वास्तव में आज की परिस्थितियों के सामने खड़े होकर मुठभेड़ करना ही समकालीन है। इसीलिए अतीत की गोद से यात्रा करते हुये जो भविष्य की ओर संकेत करे वही समकालीन कहा जाता है।

समकालीन कला की अवधारणा को पर्याप्त रूप से समझने के लिये आधुनिक समाज की अवधारणा, विचार, परिवेश और उनकी पसन्द को वखूबी समझना अति आवश्यक है। तभी हम समकालीन कला को समझेगें। दरअसल आधुनिक कला आन्दोलन के बाद की सृजनात्मक कला को परिभाषित करने के लिये जिस आधुनिक कला शब्द का व्यवहार भारत में अब तक किया गया उसकी शक्ति क्षीण हो गई है आज उसी कला के लिये समकालीन कला शब्द का प्रयोग हो रहा है।

आज समाज की संरचना के लिये कलाकार के मन में अनेक नये विचार जन्म ले चुके हैं। साथ ही कला के पारम्परिक अन्त पूर्वाह में नई खोजों ने भी कला को नई दिशा दी है प्रयोगधर्मी कलाकारों ने बिल्कुल नई समझ के साथ सृजन कार्य आरम्भ किया। कला धीरे-धीरे जीवन का प्रतिबिम्ब बनती गई। इस प्रकार आज भारतीय कला का जो रूप देखा

www.ignited.in

गया। उसकी पहचान आधुनिक कला या समकालीन कला के रूप में की गई। इस दौर में रची गई अनेक कलाकृतियों को कलातीत कला कहकर सम्बोधित किया गया। संसाधनों के विकास ने अभिव्यक्ति की सम्भावनाओं को अधिक स्वयं स्फूर्त बनाया। इसके गतिमान रूप कैनवास से लेकर एक्रिलिक और जल रंगों में, सेरीग्राफी और फोटोलिथोंग्राफी में भी अभिव्यक्त किये गये हैं।

आज के कलाकारो के पास साधनों को कोई कमी नहीं है। वह अनेक माध्यमों में चित्र बना रहे हैं। इस प्रकार कला के विविध रूपों का विकास हो रहा है। जलरंग व तैलरंग का उपयोग इतिहास में एक लम्बे समय से हो रहा है। और आज भी इसका प्रयोग सरल व सुगम बना हुआ है। सामान्यतः चित्रों को रंगों के साथ ही देखा व समझा जाता रहा है और कलाकार चित्रों में उन्हीं माध्यमों का उपयोग अभिव्यक्ति के लिये करता है। जो उसे सहजता से उपलब्ध है और आवश्यकतानुसार उसे काम में लाया जा सके। आज के कलाकारों को अनेक प्रकार की वस्तुओं की जानकारी है और उसके सामने अनेक प्रकार के साधन हैं जिन्हें वह अपनी कलाकृति के लिये चुन लेता है।

हमारे चित्रकारों के चित्र गुफाओं से उतर कर ताड़पत्रों और ताड़पत्रों से उतरकर कागज पर और कागज से उतरकर कैनवास और फिर उस से भी आगे कैनवास से उतरकर कहीं भी और कैसे भी बन सकते हैं। अर्थात चित्र आगे भी न जाने किन-किन माध्यमों पर उतर आयें कहना मुश्किल है। आज के कला परिदृश्य में मोटे रूप से भारत में ही नहीं सम्पूर्ण विश्व में भी दो तरह की प्रवृतियां देखने को मिलती हैं। एक प्रवृत्ति में तो वह कलाकार हैं जो इस तरह की कलाकृतियों की रचना में लगे है। जिसमें बाजार, रेलवे स्टेशन, नदी पुल, जनमानस से भरे पार्क, शोषित पीड़ित मजदूर, गरीबी बदहाल जिन्दगी से लथपथ मानव आकृतियां, वस्तुपरक चित्र इत्यादि सम्मिलित है। जिनका वह यर्थात् चित्रण करते है। दूसरी ओर उपरोक्त व्यौरों से परे बनाये जाने वाले चित्रों के चित्रकार आते हैं जो इस प्रकार के चित्र बनाते हैं, जिनमें प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भौतिक वस्तुओं का संकेत नहीं होता है। यानि भौतिक तत्वों से रहित वस्तु निरपेक्ष चित्र दिखाई देता हैं।

समकालीन कलाकारों ने आन्तरिक नेत्रों द्वारा वस्तु के स्वभाव को आत्मसात करते हुये खुद को बन्धनों से मुक्त कर लिया है। वह प्रकृति की नकल नहीं करता और न ही उसे वस्तु के साम्य से कोई लगाव रहता है। प्रकृति उसके अनुभव की वस्तु बन जाती है। वस्तु के मूल तत्वों द्वारा आकार का सृजन ही समकालीन कलाकार की मूल रचना पद्धति रही है। जिसके द्वारा वह वस्तु का प्रत्यक्ष चित्रण करता है। वह न केवल विषय वस्तु के स्वभाव को निश्चित करता है बल्कि रंग, रूप, धरातल और उभार आदि सभी दृष्टिगुणों को प्रदर्शित करते हुये नई दिशा, नये भाव और नये विचार प्रदान करता है।

आज हम समकालीन कला के उस दौर से गुजर रहे हैं। जहाँ कला गतिविधियां तेजी से बढ़ रही हैं। अनेकों नई-नई कला दीर्धायें खुली हैं। नये कलाकारों का भी काम सामने आया है। कलाकृतियों का बाजार में मूल्य भी बड़ा है और कला संग्राहक भी सचेत हो रहे हैं। प्रदर्शनियों की संख्या आज जितनी अधिक बड़ी है। उतनी पहले कभी नहीं हुआ करती थी। चित्रों की फ्रेमिंग (मड़वाना) उनकी छोटी सी किताब (कैटलोगिंग), उनके रखरखाव और उनकी तकनीकी दृष्टि से प्रचलन भी बड़ा इसलिये हमें अपने सरोकारों और सन्दर्भो को साफ-साफ देख और समझ लेना भी आवश्यक है भारतीय कला जगत में वे ही कलाकार मजबूती से खड़े हो सकते हैं जो समाज और कला की नई-नई चुनौतियों को स्वीकार करने की क्षमता रखते हैं। साथ ही अपने परम्परागत कला सौन्दर्य और उसके गौरव को भी मजबूती से पकड़ कर रख सकने का भी सामर्थ्य रखते है। हम हमेशा ही पश्चिमी चकाचौंध का अनुसरण करके हीन भावना से ग्रसित रहे है। और इस स्थिति को बदलने में भी लम्बा समय लगा है।

सबसे पहले शायद रवीन्द्रनाथ टैगोर ने ही इस भयावह स्थिति को सम्भाला, जब उन्होने अपने जीवन के सन्ध्याकाल में कागज और कलम की भाषा को एक ओर रखकर रंगों और कूंची की भाषा को अपनाया और लगभग दो हजार से भी अधिक चित्र और रेखाँकन बना डाले। आज के वर्तमान समय में देश में समकालीन कला के लिये एक माहौल तैयार हुआ है। आज का युवा कलाकार अपने माहौल, परिवेश और रोजमर्रा के बुनियादी सवालों और सरोकारों से भी अपने को जुड़ा हुआ देख पा रहा है। यह एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है। आज का भारतीय कलाकार इस नये वातावरण को झेलने के लिये ही नहीं उसे आत्मसात करने के लिये भी तैयार हो चुका है उसकी नियति अब एक निर्णायक दौर से गुजर रही है। जहाँ उसे अपने अस्तित्व की पहचान की लालसा है।

प्रतीक- उद्भव और विकास

सौन्दर्यमयी प्रकृति की गोद में जन्मा मानव अपनी सौन्दर्य परक प्रवृत्ति के कारण ही सम्पूर्ण सृष्टि में विशिष्ट स्थान रखता है सौन्दर्य दृष्टा के लिए सृष्टि के कण-कण में सौन्दर्य की सत्ता व्याप्त है, सौन्दर्य प्रकृति में है और मानव मन में। मानव की यह सौन्दर्यानुभूति कला के रूप में प्रकट होती है।

सृष्टि के आदिकाल में मानव ने जब इस धरती पर जन्म लिया होगा और अपने चक्षुओं को खोला होगा तब वह निश्चय ही इस लीलामयी प्रकृति की अनुपमछटा को देखकर हर्षित व भ्रमित भी हुआ होगा। हर्ष का कारण जहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य और जीवन यापन हेतु प्रकृति प्रदत्त वस्तुएं रही होंगी वहीं वह सार्वभौम सत्यों से भ्रमित व आश्चर्य चकित हुआ यथा सूर्य का उगना व अस्त होना, रात के बाद दिन व दिन के बाद रात होना, चाँद तारों का निकलना, आँधी तूफान, धूप छाँव आदि प्राकृतिक परिवर्तनों को देखकर आश्चर्य चकित हुआ वहीं, दूसरी ओर मृत्यु होने पर आतंकित भी हुआ। फलतः प्राकृतिक कार्य व्यापारों, अनूठे परिवर्तनों और सार्वभौम सत्यों के घटित होने के फलस्वरूप उसमें दौर्बल्य शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ यद्यपि यह कारण सहज था इसे रोक पाने में वह असमर्थ था, सम्भवतः वह इन सब से संघर्षरत भी रहा ऐसा अनुमान किया जाता है। प्राकृतिक परिवर्तनों पर विजय पाने हेतु वह संघर्षरत रहते हुए जब कुछ न कर सका और वह सब क्रमानुसार घटित होता रहा तो आदि मानव ने अदृश्य सत्ता को स्वीकार कर उसे शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित कर सर्वोच्च स्थान दिया। तब यह स्वाभाविक ही है कि इस अदृश्य सत्ता का प्रत्यक्षरूप प्राकृतिक उपादान होने चाहिए, और थे। फलतः वह प्राकृतिक उपकरणों की शक्ति के रूप में आत्मरक्षार्थ हेतु उपासना करने लगा जो कालान्तर में रूढ़ि होती गई और यहीं से आदिमानव के आत्मरक्षार्थ हेतु उपास्य प्राकृतिक उपादान प्रतीक बन गये तथा इन प्रकृति प्रदत्त शक्तियों तथा उपादानों के आधार पर ही मानवीय कलाऐं विकसित होती गई। एक तरह से प्रतीक कला के उद्भव की आरम्भिक अवस्था की कहानी हम यहीं से मान सकते हैं।

वस्तुतः प्रतीकोद्भव के अन्य कारण भी हो सकते हैं। विभिन्न विद्वानों व आलोचकों ने अपने-अपने मतों से उसे व्यक्त करने का प्रयास किया है। मूलतः प्रतीक मानवाभिव्यक्ति का रूढ़िगत प्रकटीकरण है और अभिव्यक्तिकरण मानव का सहज स्वभाव। मानव सामान्यतः अपने भावों को दूसरों तक पहुंचाने के लिए शब्द, चित्र, संकेत, मुद्रा-प्रतीक आदि को माध्यम बनाता है।

प्रतीकोद्भव के मूल श्रोत तक पहुँचने के लिए आदि मानव के विश्वासों, रीतिरिवाजों, प्रथाओं व अन्य मिश्रित प्रकृति को समझना आवश्यक है, आदि मानव के निवास स्थान गुफाओं, कन्दराओं में उनके द्वारा अपने भावों को प्रकाशित करने वाले चित्र मूर्तियाँ, बर्तन, आदि के अवशेष पाये जाते हैं जिसके अवलोकन से ज्ञात होता है कि - गुहा निवासी अच्छे लगने वाले मृग, पक्षियों, पेड़-पौधों व अधिकांशतः प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं के चित्र, किसी कड़ी लगने वाली वस्तु पत्थर या लकड़ी आदि से अंकित करते थे।

अस्ति भांति प्रिय रूपं नाम चौत्यर पन्जकम्।

आधत्रय बृहम रूपं मायारूप ततोब्दयय।।

बृहम और माया का स्वरूप अस्ति भांति प्रिय रूप और नाम इन पांचों अंशों में विभक्त है। प्रथम तीन बृहम के रूप में और शेष दो माया के रूप हैं, सीधे शब्दों में हम कह सकते हैं कि कोई वस्तु है अस्ति। उसका हमें बोध होता है यह हमें अच्छी लगती है प्रिय, उसके रूप की हम कल्पना करते हैं, और उसे नाम देते हैं।

कुछ अन्य विद्वानों के विचार कुछ इस प्रकार हैं -

पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार - प्रतीक अप्रस्तुत का प्रस्तुत रूप में अवतार है।

प्रतीक एक ऐसा साधन है जो हमें अमूर्तन की सामर्थ्य देता है।

लैंण्ड्रिट के विचार में - सृष्टि को ईश्वर से मिलाने वाले सम्बन्धों का विज्ञान ही प्रतीकवाद है।

भारतीय कला परम्परा में प्रतीक पृष्ठभूमी के रूप में

कला में भी प्रतीक का प्रयोग नवीन नहीं है। सम्भवतः कला से भी पूर्व प्रतीक की उत्पत्ति हो चुकी थी अतः हम कह सकते हैं कि समस्त कला प्रतीकों का आश्रय लेकर ही विकसित व पल्लवित हुई। भाषा साहित्य, विज्ञान, धर्म, दर्शन आदि सभी क्षेत्रों में प्रतीक विधि को अपनाया गया है। किसी विशेष भाव या अर्थ को दर्शाने हेतु प्रतीकों का निर्माण किया जाता है। कला के क्षेत्र में भी कलाकारों द्वारा नित नये-नये प्रतीकों का सृजन किया जाता रहा है परन्तु कला में निहित प्रतीक प्रायः अन्य क्षेत्र में निहित प्रतीकों से कुछ अंशों में भिन्न नजर आते हैं। कला दर्शन अथवा विज्ञान के प्रतीक प्रायः निर्धारित एवं मान्य अर्थ रखते हैं। कलाकार इन क्षेत्रों में प्रतीकों का प्रयोग उसी कुशलता के साथ करता है जिसे पाठक या श्रोता उसी सीमा के साथ जानता है किन्तु कला के प्रतीकों में प्रयोगकर्ता और पाठक दृष्टा या श्रोता के बीच किसी निर्धारित अर्थ के लिए ऐसा विश्वसनीय एक मत नहीं रहता है। कला के क्षेत्र में प्रतीकों का प्रयोग प्रत्यक्ष रूप से किया गया है तथा विविध अर्थों को परिभाषित करने के लिए प्रतीकों की भाषा का प्रयोग किया है, इस भांति कला को स्थूल रूप प्रदान करते

www.ignited.in

हुए भी इतनी सुक्ष्मता प्रदान की है कि बाह्य सौन्दर्य के साथ-साथ चित्र का आन्तरिक सौन्दर्य भी दर्शकों को आकर्षित कर लेता है यह चित्रकार के भावों का ताना बाना है जो चित्र स्थल को अद्भुत दृष्टि, विशालता व चारूता तथा जीवन्तता प्रदान करता है।

किसी स्थान की सभ्यता संस्कृति जाति का अनुमान हमें तत्कालीन कला परम्परा में निहित प्रतीकों से होता है। अतीत से लेकर आज तक की कला परम्परा में कुछ ऐसे प्रतीक निहित रहते हैं जिनसे हमें उस स्थान की सभ्यता संस्कृती का ज्ञान होता है। यदि हम समस्त कला परम्परा पर एक दृष्टि डालें तो निसंकोच यह कह सकते हैं कि भारतीय कला का उद्भव व विकास प्रतीकों के आधार पर ही सम्भव है। आदिम मनुष्य प्रकृति के रहस्यों से अनभिज्ञ था प्रकृति की भयंकर शक्तियों से बचने के लिए उन्हें प्रसन्न करने हेतु उनकी पूजा करता था तथा भेंट व बलि आदि देता था अपनी उपासना को प्रभाव पूर्ण बनाने के लिए उसने कलाओं की सृष्टि की कला के माध्यम से वह अपने खाली समय में अपने मनोभावों को व्यक्त करता था तथा प्रकृति प्रदत्त शक्तियों से बचने हेतु देवी देवताओं का अंकन कर पूजा अर्चना करने लगा प्रारम्भिक अवस्था में वह जो चित्रण करता था वह मात्र किसी वस्तु का प्रतीकात्मक चित्रण ही होता था क्योंकि वह उस चित्र से मात्र उस वस्तु का आभास या बोध कराना चाहता था, इस प्रकार के प्रतीकात्मक चित्रों के उदाहरण हमें प्रागैतिहासिक कालीन गुफाओं से प्राप्त चित्रों के अवशेषों में आज भी देखने को मिलते हैं।

आदि मानव के भाव प्रकाशन का एक रूप चित्रालिपि भी रही है। चित्रालिपि में चित्रण प्रायः प्रतीक रूप में ही होता था इसके लिए कुछ नियम पहले से निर्धारित कर लिए जाते थे जिससे भावों विचारों को सुगमता से समझा जा सके विवाहित स्त्री के लिए स्त्री तथा झाड़ू, अन्धकार के लिए वृक्ष के नीचे सूर्य, स्नेह के लिए स्त्री तथा पुत्र, प्रकाश के लिए वृक्ष पर सूर्य एवं चन्द्र आदि संकेत चिन्ह बनाये गये। मिश्र में प्यास का प्रतीक जल तथा जल की और दौड़ते पशु हैं। जब चित्रालिपि में पूर्ण सफलता नहीं मिली तो पूर्ण प्रतीकात्मक चित्रण की परम्परा का प्रचलन होने लगा। प्राचीन मानव द्वारा अपने उपयोग की वस्तुओं को अलंकृत करने में जो भावना मानव मन के किसी कोने में छुपी रही होगी वह समय के साथ विकास और ज्ञान की ज्योति में सुसंस्कृत हो अनेक कला रूपों में प्रकट होने लगी। आदिम कला कृतियों द्वारा प्राप्त कला अवशेषों से ज्ञात होता है कि तत्कालीन अधिकांश प्रतीक चित्र प्रकृति, आखेट, आमोद प्रमोद, जादू टोना घरेलू उपकरण आदि विषयों तक सीमित थे। अतः कह सकते हैं कि प्रत्येक काल की कला में निहित प्रतीकों पर तत्कालीन परम्पराओं, आस्थाओं, आचार व्यवहारों, का प्रभाव अपेक्षित है प्रागैतिहासिक चित्रों की खोज में पहाड़गण चित्रों के वैष्णव व शैव और तन्त्र सम्प्रदाय के प्रतीक चिन्ह आरेखित मिले हैं। जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि वहाँ आर्य संस्कृति का प्रादुर्भाव था क्योंकि आर्य जिस सूर्य की पूजा करते थे उसका चित्रांकन यहाँ हुआ है। मानव की आदिम अवस्था से ही धर्म को विशेष महत्व दिया जाने लगा था। प्राकृतिक शक्तियों से बचने के लिए प्राकृतिक उपादानों वृक्षों आदि को देवत्व स्वरूप मानकर उनकी उपासना करने के लिए उनका चित्रण किया जाने लगा। तत्कालीन अधिकांश चित्रण धार्मिक प्रतीकात्मक चित्रण थे।

सिन्धु घाटी से प्राप्त अवशेषों से पता लगा है कि भारत में शक्ति की पूजा तभी से आरम्भ हुई इजियन से सिन्धु और सतलज तक देवी माता की प्रतीक नारी मूर्तियाँ बड़ी संख्या में मिली है। मोहनजोदड़ो- हड़प्पा में शिव शक्ति की उपासना के भी प्रमाण मिलते हैं। मिर्जापुर के शिलाश्रयों पर अंकित हाथ के छापे धातुमूलक अथवा किसी पूजा-भाव से अंकित किये गये होंगे। जो कि मांगलिक भावना की द्योतक है।

वैदिक युग से सूर्य और चन्द्र के प्रतीक रूप आज भी लोक मान्य है। भारतीय कला परम्परा के आदि काल से कुछ बहु--प्रचलित प्रतीक चले आ रहे हैं जैसे- स्वास्तिक शंख, कलश, व अनेक प्रकार के ज्यामितीय प्रतीक जिनका कुछ विकसित व परिवर्तित रूप हमें आज भी कहीं थोड़ा कहीं अधिक देखने को अवश्य मिल जाता है। स्वास्तिक भी ऐसा ही प्रतीक चिन्ह है यह मानव और विश्व का सर्वोत्तम मांगलिक चिन्ह है। स्वास्तिक पूजा का चलन आदि लोक संस्कारों से लेकर शैल चित्रों, सिन्धुघाटी की सीलों, बौद्ध, जैन, तथा हिन्दू धर्म के प्रतीक के रूप में मिलता है। स्वास्तिक पूजा का एक दृश्य बनियावेरी पंचमढ़ी गुफा के भीतर शिलाभित्ति पर अंकित है इस चित्र में पूजकों द्वारा छत्र चढ़ाने का दृश्य अंकित है तथा उनकी भंगमाओं में पूजा भाव का भी समावेश हुआ है। स्वास्तिक को केन्द्र में रखकर उसके इधर-उधर उपासकों की आकृतियाँ, विविध मुद्राओं व गतिशीलता व भाव शीलता के साथ प्रदर्शित हैं। स्वास्तिक धन चिन्हवत बनाया गया है और उसे समानान्तर रेखाओं द्वारा पूरित किया गया है। शैल चित्रों में मेरू पर्वत, नन्दिपाद, कल्पवृक्ष कमल, चक्र हस्त, मंगलघट, त्रिशूल, सूर्य चन्द्र आदि के भी प्रतीक चिन्ह देखने को मिलते है वृक्ष पूजा के भी कलात्मक प्रतीक अवशेष उपलब्ध होते हैं। सिन्धु के लोगों ने पीपल के वृक्ष में स्थित देवता को उर्वरता की शक्ति का प्रतीक मान कर उसे जीवन वृक्ष मान लिया तथा मुहर में प्रतीक रूप में अंकित किया था। बकरे का अंकन भी उर्वरता के प्रतीक रूप में मुहरों पर हुआ है। कबरा पहाड़ियों में आरा युक्तचक्र अंकित मिलता है इसका

अंकन प्रायः आदिकाल से आज तक की कला में विशेष भावों के प्रदर्शन में प्रयुक्त हुआ है तथा विष्णु का विशेष प्रतीक है। मंगल घट का भी अंकन प्रतीक रूप में हुआ है। त्रिदेवों का प्रतीक मानकर पूर्ण घट की स्थापना की जाती है। भरहुत, सांची, नागार्जुन बेडा, मथुरा, अमरावती, सारनाथ आदि में अमृत से भरे पूर्ण कुम्भ का उल्लेख मिलता है। यह सुख, समृद्धि और जीवन की पूर्णता का प्रतीक है। मोहन जोदड़ों से प्राप्त पशुपति मूर्ति पर त्रिशक्ति का प्रतीक त्रिशूल तथा स्वास्तिक भी मिला है। बुद्ध का यह प्रिय प्रतीक है।

आदिम कला क्षेत्र में विशेष रूप से स्वास्तिक, कमल, शंख, चक्र, सूर्य, वेदी, नाग, गरूण, प्रकृति, पशु, प्रतीक आदि तथा ज्यामितीय तान्त्रिक व धार्मिक प्रतीक चिन्ह पाये गये हैं, प्रायः सभी ज्यामितीय, कृतियाँ तत्कालीन मानव जीवन की धार्मिक सांसारिक कृतियों के प्रतीक चित्र हैं, चार का अंक भी स्वास्तिक का प्रतीक है।

आदिम कला क्षेत्र से प्राप्त प्रतीक चिन्ह गुप्त, बौद्ध, जैन, तथा मुगल, राजपूत, व आधुनिक कला परम्परा में भी अपना विशिष्ट स्थान बनाये हुये हैं। किसी भी देश व काल की कला के प्रतीक तत्कालीन सभ्यता, संस्कृति, व परिस्थितियों से अवश्य प्रभावित होते है। आदिमकला में अधिकांशतः प्रकृति के अपादानो का प्रतीक रूप में ग्रहण किया है। शैल चित्रों की यह परम्परा धीरे-धीरे विकसित होकर भित्ती चित्रण परम्परा में परिवर्तित हो गई। जोगीमारा, अजन्ता बाघ, ऐलोरा, बादामी, सित्तनवासल आदि महान गुहा मन्दिरों में ब्राहमण, जैन और बौद्ध धर्म से प्रेरित चित्रण में प्रतीकात्मक रूप में भावों का बड़ा रमणीय प्रदर्शन किया गया है। रामायण, महाभारत तथा अन्य पुराणों महाकाव्यों में, धार्मिक विषय सम्बन्धी चित्रण में वेदों के ऋिषियों ने प्रकृति को रूपों में पूजकर देवों को स्थान दिया। ये दैवी शक्तियाँ ही बाद में स्वर्ग, नरक, लोक परलोक, आत्मा परमात्मा, बहमा विष्णु आदि कही जाने लगी। महाभारत में सुवर्ण वृक्ष, सुवर्ण कमल, नाना भाँति के रत्नों की सीड़ियाँ आदि का चित्रण है। मौर्य काल में अशोक के दरवारी कलाकारों ने पशु पक्षियों और धर्म के सुविदित दृष्टान्तों को अपनी कला में विशेष अर्थ के रूप में चित्रित किया है। अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रसार में कला का माध्यम स्वीकार किया।

प्राचीन भारत में चित्रों को मांगल्य का सूचक समझा जाता था, सुख, सम्पत्ति तथा मंगल की भावना के अभिप्राय से दीवालों पर भाँति -भाँति के धार्मिक, सामाजिक, कथा कहानियों से सम्बन्धित चित्र अंकित किये जाते थे जिसमें अजन्ता में लतावध, कमल, हंस हाथी, व बौद्व सम्बन्धी चित्र विशेष हैं। विवाह आदि पर देवता का अंकन कर पूजा जाता था। भारतीय चित्रकला का ऐतिहासिक रूप अजन्ता की गुफाओं से प्राप्त होता है इसकी गुफाओं में तत्कालीन महाकाव्यों के पात्रों का चित्रण किया गया है जिसके नायक गौतम बुद्ध थे उनके समस्त जीवन तथा घटनाओं का चित्रण हुआ है। तथा इन चित्रों में बौद्ध धर्म से सम्बन्धित प्रतीक- वृक्ष, चक्र, छत्र, एवं पादुका, विशिष्ट भावों के प्रतीक माने गये हैं। अजन्ता, बाद्य, सित्तनवासल, बादामी, ऐलोरा आदि गुहाओं के चित्रों में अधिकांशतः बौद्ध धर्म व बुद्ध के विशेष प्रतीकों के चित्र, प्राचीन लोकप्रिय प्रतीकों की पुनरावृत्ति हुई है, नारी व पुरूषों को आध्यात्मिक सौन्दर्य से मण्डित किया गया है जैसे मुखाकृति अण्डवत, धनुषाकार भौहे, कमलपांखुड़ी, सदृश्य नयन, डमरू जैसी कमर समान नारी देह आदि। यही प्रतिमान आगे चल कर जैन अपभ्रंश व राजस्थान में भी देखने को मिलते हैं। प्रेम दृश्यों को भी विभिन्न प्रतीकों से रूपायित किया गया है।

बौद्ध चित्रण में बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित प्रतीक कथाएँ हैं तथा सभी गुफाओं में अनेक जातक कथाओं का प्रतीकात्मक चित्रण हुआ है। गुफा में शिव जातक का चित्रण मार- विजय के दृश्य में मार समस्त बुरी भावनाओं और बुराइयों का प्रतीक था राक्षस के चित्रण भी बुराई तथा बुरी भावनाओं के प्रतीक हैं। बुद्ध जीवन के चित्रों में बोधिसत्व ही प्रतीक रूप में दर्शाय गये हैं। बाघ की चित्रावली में हाथी और बैल का भी चित्रण है जिसमें हाथी मांगल्य का और बैल प्रथ्वी की समृद्धि का प्रतीक है। ऐलिफेण्टा में भगवान शंकर की त्रिमूर्ति प्रतिमा है। जिसमें बृहमा, विष्णु, महेश के चित्र है जिसे उनके प्रतीकों द्वारा ही जाना जा सकता है। बाध की चौथी गुफा में नीले कबूतरों की एक जोड़ी बनाई है जो कि प्रेम प्रसंग की प्रतीक है तथा रंगों का भी विशेष प्रतीकात्मक रूप में प्रयोग किया गया है। सिगिरिया के एक चित्र में कुलीन महिलाओं को पीले व नारंगी रंग से तथा दासियों को गहरे रंग से चित्रित किया गया है।

भित्ति चित्रण की कला परम्परा ने आगे चलकर लघु चित्रण का रूप धारण कर लिया जो फलकों भोजपत्रों कागज और कपड़ों के आधार पर पल्लवित हुई, भारतीय कला परम्परा को जीवित बनाये रखने का श्रेय जैन व गुजराती शैली को भी जाता है, इस समय तीन शैलियाँ पाल, जैन, गुजराती मुख्य थीं इसी समय पोथी चित्रण अधिकांश रूप में हुआ है जिनमें प्रतीकात्मक रूप में धार्मिक, सामाजिक विषयों का चित्रण किया गया है विशेष रूप से जैन धर्म व जैनों के 24 तीर्थकरों को उनके प्रतीकों द्वारा ही चित्रित किया गया है, जैन कला के प्रवर्तक 24 तीर्थकारों के चित्र उनके वर्ण व प्रतीक चिन्ह और दीक्षांत नियुक्त हैं। जैसे महावीर का वर्ण पीला, पार्श्वनाथ का प्रतीक चिन्ह सर्प, नेमिनाथ का शंख, ऋषभ नार्थ का वृष

www.ignited.in

प्रतीक चिन्ह है इनके साथ ही इनका चित्रण हुआ है। जैन चित्रकला में विभिन्न अलंकरणों फूल पत्तियों बेलबूटों आदि को अंकित करके उनके द्वारा सुख समृद्धि को दर्शाया है। राजपूत शैली में प्राप्त प्रतीकात्मक चित्रण प्राय अपभ्रंश शैली की ही देन है। अपभ्रंश शैली के अधिकांश चित्र जैन धर्म से सम्बन्धित हैं तथा रागमाला, अंगार ऋतु व कृष्ण लीला सम्बन्धी उत्कृष्ट चित्र भी अपभ्रंश की ही देन है।

लघु चित्रण परम्परा 16वीं शताब्दी में पूर्ण यौवन पर थी इस काल में कला का पूर्ण विकास हुआ राजस्थान के लघु चित्रण में नरक भन्त्रणाओं के चित्र लौकिक विश्वासों के प्रतीक हैं। रागरागिनी, ऋतु वर्णन, कृष्ण लीला, राजा व दरबारी जीवन के चित्रों को प्रतीकात्मक शैली द्वारा चित्रित कर अनौखी सुन्दरता व सार्थकता प्रदान की है बारहमासा चित्रों में तो प्राकृतिक प्रतीकों का बड़ा ही सटीक व सुन्दर अंकन किया गया है।

मुगल काल में अकबर के समय में चित्र कला चर्मोत्कर्ष पर थी तथा बैष्णव धर्म की धारा प्रवाहित थी दरबारी संरक्षण में भी कलाकारों ने विभिन्न विषयों को बड़े रोचक ढ़ग से चित्रित किया है। लघु चित्रण की यह परम्परा विकास के पथ पर बढ़ती हुई पहाड़ी शैली, कांगड़ा, गुलेर, बसौली आदि के रूप में सामने आई और जिन विषयों पर राजस्थानी व मुगल में चित्रण हो रहा था अधिकांशतः उन्हीं विषयों को पहाड़ी कलाकारों ने कुछ परिवर्तित रूप कर अपने ढंग से प्रतीक सृजन द्वारा प्रस्तुत किया तथा राधा-कृष्ण के श्रृंगार वियोग, संयोग आदि चित्रों का तो प्रतीकात्मक चित्रण देखते ही बनता है।

समकालीन कला में प्रतीक का महत्व

कला की उत्पत्ति का श्रेय प्रतीकों को ही जाता है। प्रतीक से ही भाव व्यक्त होते हैं। प्रतीक की अपनी एक भाषा होती है। जैसे साहित्य में भी प्रतीकात्मक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। वैज्ञानिक पहलुओं में भी प्रतीक एक चिन्ह के रूप में उपयोगी है। प्रतीक स्वयं में एक सांकेतिक अर्थ लिए हुए हैं। कला भाषा के समान ही अभिव्यक्ति का माध्यम है। दोनों के साधनों में अंतर है एक का रंग, तूलिका, कागज, मिट्टी और धातु तो दूसरे का स्वर, कलम और स्याही साधन है। चिन्ह, प्रतीक, बिंब, आकार, लक्षण और प्रारूप आदि माध्यम है। यदि इनका सहयोग नहीं लिया जाए तो अपनी अभिव्यक्ति कर पाना कलाकार के लिए संभव नहीं हो पाएगा। साधन उस पदार्थ को कहते हैं जिससे वस्तु आकार लेती है। जैसे कागज, सोना, चांदी, मिट्टी, धातु या कपड़ा आदि महत्वपूर्ण है। जिसके द्वारा वह अपनी अभिव्यक्ति को सामने वाले तक पहुंचा सके। सभी कलाओं में चिन्ह, प्रतीक, बिंब, आकार, गति या लय का प्रयोग होता है। कला जगत में प्रतीकों का स्थान सर्वोपरि है। प्रतीकों की रचना कलाकार द्वारा अपने कल्पना लोक में विचरण करने पर ही होती है जिसमें वास्तविक एवं यथार्थता का समावेश प्रतीकों के सृजन में मिलता है। प्रतीकों की रचना केवल संसार में देखे गए रूपों के आधार पर ही नहीं होती बल्कि कलाकार अनेक लौकिक अलौकिक एवं वास्तविक काल्पनिक के सहयोग से भी प्रतीक सृष्टि करते हैं। आंशिक रूप से अचेतन मस्तिष्क पर पड़े प्रभाव को जब हम किसी चिन्ह या अवशेष के द्वारा अभिव्यक्त करते हैं तो प्रतीक स्वतः जन्म ले लेता है। प्रतीक में सृष्टा एवं सृष्टि का संबंध स्पष्ट रूप से रहता है। परमेश्वर से कलाकार का आत्मिक मिलन एक मूक अभिव्यक्ति को जन्म देता है। प्रतीक का अर्थ उसकी अनुभूति के आधार पर निर्धारित होता है। अनुभूति भिन्न-भिन्न भी हो सकती है तो उसका अर्थ भी भिन्न-भिन्न निकलेगा। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से प्रतीक का उद्भव सर्वप्रथम मस्तिष्क पर होता है। प्रतीक में यथार्थता का पुट स्पष्ट मिलता है। इनमें न्यूनता का स्तर नहीं रहता। प्रतीक का शाब्दिक अर्थ अवयव, अंग, अंश भाग या चिह्न है अर्थात वह चिन्ह जो अपने मूल बिंदु का परिचारक हो। संस्कृत भाषा में प्रतीक शब्द का प्रयोग प्रतिमा, चिन्ह या संकेत के अर्थ में प्रयुक्त होता है। वर्तमान में प्रतीक शब्द को अंग्रेजी में सिंबल कहते हैं।

कुछ भारतीय विचारकों ने भी कला में प्रतीकों के महत्व पर विचार व्यक्त किये हैं। जिनमें आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार प्रतीक हमारे मनोविकार और भावनाओं को जागृत कर देते हैं। यदि हम किसी देवता का प्रतीक देखते हैं तो हमारे मन में श्रद्धा की भावना तुरंत जागृत हो जाती है। डॉ सुरेश चंद्र त्यागी प्रतीक के विषय में लिखते हैं कि वह गोचर या अगोचर वस्तु जिसमें किसी अन्य वस्तु का भाव जगाने की शक्ति हो। कलाकार अपनी कला में विभिन्न प्रकार के प्रतीकों का प्रयोग करता है। वह प्रतीक जो पर ंपरागत अर्थ में अपरिवर्तित रूप में चले आ रहे हैं उन्हें सहजता से कलाकार अपनी कला में संजोता है साथ ही साथ व्यक्तिगत प्रतीक जिसका निर्माण कलाकार अपनी निजी अनुभूति को प्रकट करने के लिए करता है। समकालीन कला में इस प्रकार के प्रतीकों का प्रचलन अधिक है। भारतीय विचारकों ने मूल रूप से यह कहा है कि हिंदू देवी-देवताओं जैसे विष्णु, शिव, ब्रह्मा, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती तथा अन्य देवी देवता के अवतार के चित्र वेद शास्त्र पुराण के वर्णन के अनुसार कल्पना के आधार पर प्रतीकों के साथ ही विकसित हुए हैं। जैसे विद्या की देवी सरस्वती को श्वेत वस्त्रों में चित्रित किया। श्वेत रंग ज्ञान का प्रतीक है। उनकी सवारी हंस विवेक बुद्धि का प्रतीक है साथ ही उनके हाथ में वीणा और पुस्तक कला- विज्ञान और विद्याओं का प्रतीक है। जहां एक ओर ब्राम्हण की परिकल्पना में नक्षत्र

संबंधी देव प्रतीकों की सृष्टि हो रही थी वही दूसरी ओर विश्व नियामक नैतिक सिद्धांतों प्राकृतिक नियमों को भी प्रतिष्ठा का प्रयोग किया जा रहा था। देवी देवताओं को प्रतीकों के रूप में पूजा जाता है। तंत्र के माध्यम से भी बीजाक्षरों एवं आकारों की अमुक देवता के प्रतीक रूप में उपासना की जाती है। प्रकृति की अपार शक्ति को भी प्रतीकों में इंगित किया जाता है तथा प्रतीक में ही अपार शक्ति समाहित रहती है।

शोध के उद्देश्य

इस प्रस्तुत विषय का मुख्य उद्देश्य है।

- समकालीन कला में प्रतीको के विविध आयाम का अध्ययन।
- समाकालीन कला में प्रतीको की तकनीक और रचना का अध्ययन।
- भारतीय कलाकृतियों में रंगों तत्वों सामिग्रियों और संयोजन रेखा प्रभाव तथा रचना विधान का शोधार्थी पर पडने वाला प्रभाव।
- कलाकार की रूचि प्रकृति, भावनाओं उसकी कलाकृति में दृष्टि गोचर का अध्ययन।

दिनकर जी के अनुसार- किसी विशिष्ट अर्थ का बोध कराने वाले शब्द को प्रतीक कहतें है। हिन्दू दर्शन की भावना के अनुसार डॉ. आनन्द कुमार स्वामी ने कहा है कि- बिम्ब के रूप में विचार करना ही प्रतीकवाद है। इसी प्रकार डॉ. गोपाल मधुकर चतुर्वेदी ने भी कहा है कि- प्रत्येक प्रतीक अपने मूल में बिम्ब होता है और उस भौतिक रूप से क्रमशः विकसित होकर प्रतीक बन जाता है। प्रत्येक बिम्ब अपने प्रभाव में चाहे जितना सक्रिय और संवेगात्मक हो पर अन्ततः उसकी परिणति किसी भी प्रतीकात्मक अर्थ की व्यंजना में ही होती है। मानव की भावनाओं, विचारों की अभिव्यक्ति प्रतीक माध्यम से ही भली प्रकार सम्भव है।

दाएल के अनुसार- प्रतीक अभिव्यक्ति का संक्षिप्त और मूर्त साधन है। तथा डॉ. प्रतिभा कृष्ण बल ने कहा है कि प्रतीक-अभिव्यंजना की एक अभिनव वैचित्यपूर्ण प्रणाली है। प्रायः सभी क्षेत्रों में प्रतीकों के भिन्न-भिन्न रूप और अर्थ होते हैं और सभी क्षेत्रों में अनुभूतियों को व्यक्त करने का सहज माध्यम प्रतीक ही है जब कोई अनुभूति गूढ़ होती है तो उसकी अभिव्यक्ति के लिए नवीन प्रतीकों का अन्वेषण करना पड़ता है। तथा ऐसा भी कह सकते हैं कि- जब हम सामान्य भाषा पद्धति द्वारा अपनी बात को व्यक्त करने में असमर्थ रहते हों तो प्रतीक विधि का आश्रय लेते हैं। आदि काल से कलाकार अपनी अनुभूतियों के प्रतीक विधि द्वारा ही व्यक्त करते आये है।

नीता कुमार (2016), ''समकालीन कला में लोक तत्वों की प्रयोगात्मक उपादेयता'' आपने लिखा है कि भारतीय सभ्यता में जीवन धारा लोक (जनचेतना) और वेद (शास्त्र सम्मत) के बीच होकर बहती है। लोक रंग जो सदियों पुरानी परम्पराएं चित्रण तथा शिल्प में आखें खोलती हैं वह हमारे पर्यावरण की साक्षी हैं। लोक कला की इन वसीयतों को जीवित रखना और इन धरोहरों को आने वाली पीढ़ियों तक पहुचाना हमारी नैतिक जिम्मेदारी है। जहां हमारे तीज-त्यौहारों, धार्मिक मान्यताओं, लोक संस्कारों आदि को अभिव्यक्ति करने के लिए कला माध्यम के रूप में स्वीकारी गयी है। समकालीन कला में भी पूर्व में प्रयोग किये गये तत्वों को उसी तरह प्रयोग किया जा रहा है। जिससे लोक कला को मौलिकता अपने मूलाधार में बनी रहे।

आनन्द लखटकिया (2016), ''समकालीन कला में यामिनी राय के चित्रों के लोक तत्वों की प्रयोगात्मकता'' आपने लिखा है कि यामिनी राय तथा इस प्रकार के कलाकारों के द्वारा प्रस्तुत किये गये चित्र जो लोककला के ढंग पर हैं, इन चित्रों को केवल राष्ट्रीय पैमाने पर ही नहीं अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर भी आदर हुआ समकालीन सभ्यता जीवन की अस्त व्यस्तता, युद्ध, स्वतन्त्रता धर्म की रक्षा उद्योग आदि पर जो प्रभाव पड़ता हो उसे वह कला रूपी भाषा द्वारा व्यक्त करता है। यामिनी राम ने अपने चित्रों में लोक तत्वों का प्रयोग कर भारतीय आधुनिक चित्रकला में एक ऐसा नया अध्याय जोड़ दिया जिसका प्रभाव आज समकालीन समाज के समकालीन सृजन के सभी क्षेत्रों को प्रभावित करता दिखता है जो वास्तव में एक बड़ा एवं महत्वपूर्ण विषय है। इस पर विस्तार से कहने पर इसकी महत्ता स्पष्ट होती है।

श्रीपाल सिंह क्षेम ने कुछ इस प्रकार कहा है वह वस्तु जो अपनी मूल वस्तु में पहुँच सके अथवा वह मुख्य चिन्हं जो मूल का परिचायक हो प्रतीक है। जिस प्रकार एक है प्रस्तर प्रतिमा में ईश्वर, शिव शालिग्राम की भावना मूर्त हो जाती है उसी प्रकार कलाकार अपनी भावनाओं को चाक्षुष मूर्त रूप के प्रतीकों में सृष्टि करता है प्रतीक एक ऐसा चिन्ह रूप होता है जो किसी व्यक्ति विषय, घटना, क्रिया, भावना को व्यक्त करता है। एनसाइक्लोपीडिया में प्रतीक एक चिन्ह किसी दृश्य वस्तु को दिया गया नाम जो मस्तिष्क को किसी वस्तु के सादृश्य का बोध कराता है जो दिखाई नहीं जाती किन्तु उसके

www.ignited.in

साहचर्य से अनुभूत की जा सकती है इसका सम्प्रेषण प्रतीक के साथ प्रायः सम्बन्ध रखने वाले विचारों के द्वारा होता है इस प्रकार खजूर शाख की छाल विजय का प्रतीक है और लंगर आशा का प्रतीक। अनेक विद्वानों द्वारा प्रतीक शब्द की व्याख्या की गई है अपने अपने क्षेत्र के अनुसार प्रतीक शब्द के अर्थ को पूर्ण रूप से अभिव्यक्त करने का प्रयत्न किया है। कुछ विद्वानों के विचारों में तो सिर्फ शब्दों का ही थोड़ा हेर फेर या परिवर्तन है भाव लगभग एक ही हैं।

अरविन्द झा (2016) "समकालीन कला में लोक तत्वों का समावेश" आपने अपने शोधपत्र में लिखा है कि भारतीय संस्कृति एक भिन्न-भिन्न कला पुष्पों के गुच्छे के समान है जिससे एक मुख्य पुष्प लोक कला की भी सुगन्ध प्रस्फुटित होती है और मानवता के साथ जन्मी लोक कला का भारतीय संस्कृति में विशेष महत्व है। आज के समकालीन युग में भारत के भिन्न-भिन्न राज्यों में अनेक कलाकार हैं। जैसे राजस्थानी कलाकारों में शैल योचल, विद्यासागर उपाध्याय उदयपुर की मीना वाय आदि प्रयोगधर्मी कलाकार हैं। जिन्होंने छापांकन विद्या को लोक कला में हिस्सा बनाया। छत्तीसगढ़ के राजेश शर्मा भी लोक परम्पराओं व आदिवासी क्रियाकलापों एवं प्रकृति संसाधनों जैसे गोबर, चूना, स्क्रेप, मैटल व कार्बनिक पदार्थ, लकडी का उपयोग करते हैं। भारतीय समकालीन कला में निरंतर छोटे परिवर्तन के पश्चात भी अनेक कलाकारों के योगदान से समकालीन कला में लोक तत्वों का समावेश दृष्टिगोचर होता है।

अर्चना सक्सेना (2016), "समकालीन कला में लोकतत्वों की उपादेयता" आपने लिखा है कि लोक कलाओं की उत्पत्ति मूलतः धार्मिक भावनाओं अन्धविश्वासों, भयनिवासक, समाधान अलंकरण प्रवृत्ति तथा मानवीय भावनाओं के रक्षा के विचार से हुई जो मानव संस्कृति का एक महत्वपूर्ण अंग है। धर्म, संयम, आचार-विचार नैतिक मूल्य, त्याग उपवास दान दया आदि का संश्लेषण इन कलाओं में दर्शनीय है। अतः लोक कला देखी जाने वाली वह मूल भाषा है। जिससे सदैव प्रेरणा ली गयी, लोक कला के संस्कार को सजाये व बनाये रखने में ही आधुनिक कला के विकास के बीज छुपे हैं।

उपसंहार

समकालीन कला में हमारी सभ्यता और संस्कृति का वह प्रतिबिम्ब है जिसमें वहाँ के जनजीवन की आत्मा के दर्शन होते हैं। जो वहाँ की कला में निहित प्रभामय रूपों और प्रतीकों द्वारा उद्घाटित होते हैं। प्रतीकीकरण मानव का सहज स्वभाव है जिसके द्वारा कल्पनाशील कलाकार अपनी गहनतम अनुभूतियों व भावनाओं को बड़ी सहजता से स्पष्ट करता है। आदिकाल से वर्तमान तक की कला परम्परा में प्रतीकों का प्रयोग मानवीय सभ्यता के विकास के साथ-साथ सदैव होता रहा है।

भारत के विविध क्षेत्रों में विकसित लघु चित्रण के विषयों में रूपायित प्रतीक वहाँ के कलाकारों की अमूर्त धारणाओं, धर्म, संस्कृति के मूल्यों व तत्वज्ञान को सौन्दर्यात्मक रूप में प्रस्तुत करते हैं। भारतीय समकालीन चित्रकारों ने, रामायण, महाभारत के धार्मिक पौराणिक विषयों के अतिरिक्त काव्यात्मक रचनाओं व श्रृंगार की विभिन्न स्थितियों का चित्रण, राग रागिनी, बारह मासा, ऋतुवर्णन, सामाजिक व दरबारी जीवन के विविध प्रसंगों को भी सशक्त प्रतीकों के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि रूपायित विषय के तत्व का ज्ञान दर्शक को सहज ही हो जाता है। चित्र स्वंय जीवन्त प्रतीत होते हैं। चित्रों में धार्मिक, तान्त्रिक चित्रों से लेकर सामान्य जन जीवन तथा शिकार व दरबारी चित्रों में भी प्रतीक विधि को अपनाया गया है। जिससे किसी व्यक्ति विशेष को पहचानने में दर्शक भूल नहीं कर सकता। शिकार व आमोद प्रमोद आदि के चित्रों में भी राजा को जनसाधारण से भिन्न दर्शाने के लिए आकार में कुछ बड़ा तथा मुख के पीछे कति चक्र अंकित कर उत्कृष्ट स्थान प्रदान किया है। कहीं-कहीं पर श्रृंगार के चित्रों में कृष्ण राधा के मुख के पीछे आभामण्डल चित्रित कर आध्यात्मिक भावना को भी दर्शाया है। रास मण्डल के चित्र में अनेक गोपियों के मध्य कृष्ण को नृत्य करते हुये चित्रित कर जहाँ श्रांगारिक भावना को दर्शाया है वहीं बृहम व आत्मा के मिलन की भावना को भी अच्छा प्रतीकात्मक रूप दिया है।

संदर्भ

सीना, कुरियन, समकालीन हिन्दी कविता में लोकतत्त्व (शोधग्रन्थ), हिन्दी विभाग, कोचीन यूनिवर्सिटी ऑफ़ साइंस एण्ड टेक्नोलोजी, पृष्ठ 1, 2013

ज्योतिष जोशी, समकालीन कला, कला चिन्तन, अंक 17 मई 1996, पृष्ठ 51

जयसिंह, नीरज, समकालीन कला अंक 17 मई 1996 महात्मा गाँधी और कलात्मक सृजन पृष्ठ 321

अवधेश अमन, समकालीन कला अंक 17 मई 1996, समकालीनता के नये अर्थ पृष्ठ 151

प्रोफेसर एस० बी० एल० सक्सेना, डॉ. सुधा सरन, डॉ. आनन्द लखटकिया, कला सिद्धान्त और परम्परा, पृष्ठ 1401

मीनाक्षी भारती, समकालीन कला, अंक 17 मई 1996, पृष्ठ 471

अवधेश अमन, समकालीन कला अंक 17 मई 1996 समकालीनता के नये अर्थ, पृष्ठ 15-161

वीरबाला भावसार, समकालीन कला, समकालीन कला में रचना सामग्री के नये आयाम, पृष्ठ 351

डॉ. राय विरंजन, कला दीर्धा अप्रैल 2003, वर्ष 3, अंक 6 आधुनिक कला और प्रयोगधर्मिता, पृष्ठ 301

वीरबाला भावसार, समकालीन कला, समकालीन कला में रचना सामग्री के नये आयाम, पृष्ठ 351

यूसुफ, समकालीन कला, अंक 17 मई 1996, पृष्ठ 30-311

व्यौहार राम मनोहर सिन्हा, समकालीन कला अंक 17, मई 1996 समकालीन कला के आयाम, पृष्ठ 26

व्यौहार राम मनोहर सिन्हा, समकालीन कला अंक 17, मई 1996 समकालीन कला के आयाम, पृष्ठ 261

मीनाक्षी भारती, समकालीन कला, अंक 17 मई 1996, समकालीन कला परिदृश्य में आधुनिकता, पृष्ठ 471

मीनाक्षी भारती, समकालीन कला, अंक 17 मई 1996, समकालीन कला परिदृश्य में आधुनिकता, पृष्ठ 471

Corresponding Author

Priyanka Singh*

Research Scholar (Drawing & Painting) M.J.P. Rohilkhand University, Bareilly, Uttar Pradesh

priyankasinghmbd41@gmail.com